निज दोष दर्शन से जगत् निर्दोष

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

अपने दोषों को देखना निज दोष दर्शन है। जब हम किसी की तरफ उंगली उठाते हैं तो एक अंगुली उसकी तरफ और चार अंगुलियां अपनी तरफ होती हैं। इसलिए दूसरों का दोष देखने के बजाय अपना दोष देखकर दूर करने का प्रयास करना चाहिए। कबीरदासजी ने लिखा है–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।

जो दिल खोजा आपना, मुझ से बुरा न कोय।।

अर्थात बुराई बाहर खोजने के बजाय स्वयं में खोजने का प्रयास करना चाहिए। सेवा एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा अहंकार नष्ट हो जाता है। सेवा तीन प्रकार से की जा सकती है– तन, मन और धन से। तन की सेवा शारीरिक परिश्रम के द्वारा की जा सकती है। मन की सेवा समाज को चिन्तन, मनन, नये विचार और मार्ग दर्शन के द्वारा की जा सकती है। धन से समाज के उन वर्गों के उत्थान के लिए जो धन से हीन है या जिनके पास पढ़ने–लिखने के साधन नहीं है उनको आर्थिक सहायता देकर सेवा की जा सकती है। सेवाधर्म बहुत की गूढ़ है।

मानव जीवन मे चार तरह के ऋण हैं– गुरु ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण, और समाज ऋण। योगी लोग भी इसके महत्व को नहीं समझ सके। सेवा एक शाश्वतिक धर्म है। सेवा भेद को समाप्त कर देती है। ऊँच–नीच, बड़ा–छोटा का भेद सेवाभाव में नहीं रहता। सेवा एक आंतरिक गुण है। सेवा अहंकार को भी समाप्त कर देती है। शिष्य के प्रति गुरु का भाव और गुरु के प्रति शिष्य का भाव कैसे होना चाहिए, यह सेवा के द्वारा ही प्रकट होता है। शिष्य को चाहिए कि वह गुरू की तरफ पैर करके न बैठे। ऊँचे स्वर में गुरु से बात न करे। गुरु के इंगित को समझकर उसके आदेश को मानने के लिए सदैव तत्पर रहे। गुरु के समक्ष सदैव विनम्रता का भाव प्रकट करे। नम्र वाणी में व्यवहार करे, जिससे गुरु की कृपा शिष्य पर बनी रहे।

प्राचीनकाल में भारत में गुरुकुल परम्परा थी। शिष्य गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे। शिष्य सेवा करते थे। गुरु उनको विद्यादान देते थे। जिससे शिष्य के भविष्य का निर्माण होता था। गुरु शिष्य को परा और अपरा विद्याओं का ज्ञान प्रदान करते थे। परा–विद्या अध्यात्मक विद्या है और अपरा विद्या भौतिकता का ज्ञान कराने वाली विद्या है। इन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् शिष्य का ज्ञाननेत्र उद्घाटित हो जाता था और वह सदाचार शिष्टाचार का जीवन जीता था। गुरु ही शिष्य को ईश्वर का ज्ञान करा देते थे। गुरु स्वयं आचारवान होते थे और शिष्य को आचार–विचार की उत्तम शिक्षा देते थे, जिससे शिष्य के चरित्र का निर्माण होता था। शिष्य अपनी सेवा के द्वारा गुरु ऋण से मुक्त होता था। देवपूजन करके देवऋण से मुक्त होता था।

देवऋण का तात्पर्य है कि इस संसार में जीव को लाने वाला ईश्वर की कृपा ही है। देवताओं के प्रति भक्ति, यज्ञ–यागादि का विधान, देवपूजन, अर्चन, स्तुतिपाठ आदि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया जाता था। जीव को इस संसार में लाने वाला माता–पिता है। माता के गर्भ में बच्चा नौ महीने तक पलता है। तद्उपरान्त वह इस संसार में पदार्पण करता है। न जाने कितने कष्टों को सहकर माता–पिता पुत्र का पालन करते है। पुत्र कभी भी माता–पिता से ऋण नहीं हो सकता। माता–पिता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उनकी सेवा करना, उनके आदेश को मानना, उनके अनुशासन में रहना। यह पुत्र का परमकर्त्तव्य है। सेवा के द्वारा पुत्र पितृऋण से मुक्त हो सकता है।

माता–पिता की सेवा सबसे बड़ा तीर्थ कहलाता है। श्रवणकुमार का प्रसंग इस संबंध में विचारणीय है। श्रवणकुमार अपने अंधे माता–पिता को अपने कंधों पर उठाकर तीर्थ यात्रा के लिये ले गये थे। किंतु जब पानी लाने के लिए सरोवर में गये तो वहां पर बाण से आहत होकर प्राण त्याग दिये। ऐसे उदाहरण हमारे भारतीय संस्कृति में सेवा के हैं, जहां माता–पिता की सेवा करते हुए पुत्र ने प्राण त्याग दिये। इसके अतिरिक्त समाज ऋण भी है। समाज से हम बहुत कुछ प्राप्त करते हैं। इसके बदले में हम समाज को क्या देते हैं यह विचारणीय है। समाज में रहकर हम पलते हैं, बड़े होते हैं, शिक्षा प्राप्त करते हैं और जीविकोपार्जन के साधन

प्राप्त कर अपनी पहचान बनाते हैं। इसलिए समाज या देश ऋण को उतारना भी हमारा कर्त्तव्य है।

हम देश के एक अच्छे नागरिक बने। अपने चारित्र के द्वारा दूसरों को प्रेरणा दें। मनुष्य को मनुष्य बनायें, जिससे राष्ट्र का विकास हो सके। धन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए सबसे बड़ी सेवा जरूरतमंदों को धन उपलब्ध कराना, शिक्षक का कर्त्तव्य जरूरतमंदों को निस्वार्थ भाव से शिक्षा देना है। इस कर्त्तव्य पालन से हम अपने सामाजिक ऋण से मुक्त हो सकते हैं। तन से सेवा, धन से सेवा, मन से सेवा देकर हम संतुष्ट हो सकते हैं। समाज में लूले–लंगड़े, अपाहिज बहुत से जरूरतमंद लोग रहते है जो अपना कार्य स्वयं नहीं कर सकते। दुर्गुणी व्यक्ति अन्य लोगों को भी दुर्गुणी बना देता है और सभ्य व्यक्ति समाज में अनेक व्यक्तियों को सुधारकर सद्गुण का संचार कर सकता है।